



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 8.4
 IJAR 2023; 9(5): 190-192
www.allresearchjournal.com
 Received: 23-03-2023
 Accepted: 20-04-2023

डॉ० मनोज कुमार सिंह
 शोध निर्देशक, शिक्षा शास्त्र
 विभाग, ल०ना०मि०वि०वि०
 दरभंगा, बिहार, भारत

गोपाल कृष्ण
 शोधार्थी, शिक्षा शास्त्र विभाग,
 ल०ना०मि०वि०वि० दरभंगा, बिहार,
 भारत

दिव्यांगों की शिक्षा का उद्देश्य

डॉ० मनोज कुमार, सिंह गोपाल कृष्ण

DOI: <https://doi.org/10.22271/allresearch.2023.v9.i5c.10816>

सारांश

भारत के संविधान सभी नागरिकों के लिए समानता, स्वतंत्रता, न्याय व गरिमा सुनिश्चित करता है और स्पष्ट रूप में यह दिव्यांग व्यक्तियों के प्रति एक संयुक्त परिवार बनाने पर जोर दिया है। यह माना जाता है कि यदि दिव्यांग छात्र की समान अवसर तथा प्रभावी शिक्षा की सुविधा मिल तो दिव्यांग छात्र बेहतर गुणवत्तापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

समाजिक तथा आर्थिक सशक्तीकरण के लिए शिक्षा सबसे प्रभावी माध्यम होता है। संविधान के अनुच्छेद के तहत जहाँ शिक्षा को मौलिक अधिकार माना गया है और दिव्यांग अधिनियम 1995 के अनुच्छेद 26 में दिव्यांग बच्चों को 18 वर्षों की उम्र तक मुफ्त 2001 के मुताबिक 51 प्रतिशत दिव्यांग व्यक्ति निरक्षर है यह एक बहुत बड़ी समस्या है। दिव्यांग लोगों को सामान्य शिक्षा प्रणाली की मुख्यधारा में लाने की जरूरत है।

सरकार द्वारा चलाया गया पूर्वी चम्पारण जिला के 27 प्रखंडों में सर्व शिक्षा अभियान का 18 वर्षों तक के दिव्यांग बच्चों को प्राथमिक स्कूलिंग प्रदान करने का लक्ष्य है जिसमें 6 से 14 वर्ष के बच्चे भी शामिल हैं। दिव्यांग बच्चों के लिए संकेतिक शिक्षा के तहत 15 से 18 वर्षों तक की उम्र के दिव्यांग बच्चों को मुफ्त शिक्षा प्रदान की जाएगी।

कूटशब्द : विशेष आवश्यकता, संकेतिक शिक्षा, समानता, स्वतंत्रता, न्याय व गरिमा सुनिश्चित

प्रस्तावना

विशेष आवश्यकता वाले दिव्यांग जनों का नामकरण या लेबलिंग या वर्गीकरण का उद्देश्य केवल उन्हें आवश्यकताओं के अनुरूप विशेष सेवा प्रदान करने का नहीं रहा है। इसके अन्य सामाजिक कारण भी रहे हैं। हालांकि विशेष शिक्षा में लेबलिंग या वर्गीकरण का प्रभाव नकारात्मक माना जाता रहा है। विशेष शिक्षा में इसे नीचा दिखाने, लांछन लगाने तथा भेदभाव को पैदा करने वाले साधन के रूप भी देखा गया। किन्तु वर्गीकरण कई मायनों में महत्वपूर्ण भी है। यह कानूनी अधिकार प्राप्त करने में, सरकारी सेवाओं के सटीक प्रबंधन में, उपयुक्त चिकित्सीय उपचार निर्धारित करने में, प्रभावी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के निर्धारण में, शोध कार्यों में तथा सक्षम मानव संसाधन के विकास में सहायक होता है।

इस आलेख में आप दिव्यांगता से सम्बन्धी विभिन्न मानक वर्गीकरण के बारे में समझ बना सकेंगे। विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा स्थापित क्षति, अक्षमता तथा निःशक्तता के संप्रत्यय को समझते हुए इसकी आवश्यकता तथा इसके उपयोग को भी जानेंगे। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 1980 में दिव्यांगता के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय मानक निर्धारित करने की दिशा में एक वर्गीकरण आई.सी.आई. डी. एच. (ICIDHIC) को स्थापित किया, जिसका आधार मेडिकल मॉडल था। बीसवीं सदी के अंतिम दो दसकों में इस बात को माना गया की दिव्यांग जनों के साथ सामाजिक न्याय के सिर्फ दिव्यांग जनों को ही नहीं बल्कि समाज को भी उनके आवश्यकता अनुरूप बदलना होगा। वर्गीकरण का आधार कहीं न कहीं तत्कालीन समाज के मानसिकता से परिलक्षित होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस बात को स्वीकारने में देरी नहीं की कि अक्षमता या इसकी गंभीरता समाज की विभिन्न परिस्थितियाँ तय करती हैं। फलस्वरूप संगठन ने 2000 में मेडिकल मॉडल को नकारते हुए सामाजिक मॉडल पर आधारित वर्गीकरण को व्यापक रूप में प्रसारित और क्रियान्वित किया जिसे आई. सी. एफ. के नाम से जानते हैं। इस इकाई में हम विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा स्थापित आई.सी. एफ. (जिसे आई.सी.आई.डी. एच. -2 के नाम से भी जानते हैं) के बारे में भी चर्चा करेंगे।

भारत में दिव्यांगता के क्षेत्र में सर्वप्रथम दृष्टिबाधिता पर ध्यान दिया गया। ब्रिटिश शासन ने 1942 में अंधत्व के कारण निवारण व कल्याण हेतु एक समिति का गठन किया। इस समिति ने शिक्षा मंत्रालय में अंधत्व पर एक इकाई को स्थापित करने की सिफारिश की।

बततमेचवदकपदह लजीवतलू
डॉ० मनोज कुमार सिंह
 शोध निर्देशक, शिक्षा शास्त्र
 विभाग, ल०ना०मि०वि०वि०
 दरभंगा, बिहार, भारत

यह इकाई 1947 में बनाई गई और कुछ समय बाद ही अन्य प्रकार की दिव्यांगता वाले बच्चों की शिक्षा के कार्यक्रम को इससे जोड़ा गया। उस समय शासन ने चार प्रकार की दिव्यांगता पर ही विचार किया— दृष्टिबाधिता, श्रवणबाधिता, मानसिक पिछड़ापन और गत्यात्मक असमर्थता। अधिगम दिव्यांगता को औपचारिक रूप से दिव्यांगता की मान्यता नहीं मिली।

एक समय था जब फ्रांस व रोम में दिव्यांग बच्चों को जीवित नहीं रखा जाता था। जिसका कारण था कि युद्ध करना उस समय लोगों का प्रमुख व्यवसाय था और दिव्यांग व्यक्ति इस कार्य के लिए उपयुक्त नहीं थे। दिव्यांगता के प्रति इस प्रकार का उपयोगिता संबंधी दृष्टिकोण आगे भी समाज में व्याप्त रहा।

भारत इस संबंध में एक अपवाद रहा। अशोक के राज्य काल में वृद्ध और दिव्यांग व्यक्तियों की देखभाल हेतु एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया गया था। दिव्यांग बच्चों का पालन पोषण तो होता रहा लेकिन उन्हें शिक्षा प्राप्त करने या काम करने के उपयुक्त नहीं समझा गया।

समेकित शिक्षा का प्रारंभ

विशेष शिक्षा के समर्थकों का पक्का विश्वास रहा है कि दिव्यांग बच्चे और सामान्य बच्चे की शिक्षा साथ-साथ नहीं हो सकती है। अतः 19वीं सदी के अंत तक विशेष विद्यालयों की परंपरा चालू रही। बीसवीं सदी के प्रारंभ में अमेरिका में समेकित शिक्षा पर प्रयोग प्रारंभ हुए। ब्रिटेन में 10-15 वर्ष बाद इस पर कार्य आरंभ हुआ, हालांकि 20वीं सदी के बाद के समय में यूनाइटेड किंगडम द्वारा विशेष विद्यालयों का समर्थन जारी रहा। 20वीं सदी के अंतिम 2-3 दशकों में दिव्यांग बच्चों हेतु समेकित शिक्षा कार्यक्रम का विकास हुआ।

समावेश का शाब्दिक अर्थ है सम्मिलित करना (ज्व जांम पद) एक भाग मानना (ज्व बवदेपकमत)। चंतज), या साथ लेना (ज्व मउइतंबम) समावेश का अर्थ सदस्यता से है तथा जिसका संबंध समुदाय से है।

शिक्षा के संबंध में समावेश का अर्थ विद्यालय की ऐसी पुनःसंरचना से है जिसमें विद्यालय सभी समुदायों का एक केन्द्र हो और जहां सभी प्रकार के बाल शिक्षा ग्रहण कर सकें। एक ऐसा विद्यालय जहां शिक्षक, शिक्षार्थी को सीखने के विभिन्न अवसर प्रदान करें। परन्तु समावेशी शिक्षक एवं समावेशी विद्यालय बनाने का कोई प्रमाणीकृत प्रावधान नहीं है। समावेशी शिक्षा के मूल में अच्छा शिक्षण अभ्यास, शिक्षक - शिक्षार्थी के मध्य अच्छे संबंध, कक्षा के सभी बालकों की शिक्षा में गुणात्मक सुधार तथा बालकों का विभिन्न प्रकार से सर्वांगीण विकास में सहायता करना है। समावेशी शिक्षा दर्शन में उपर्युक्त गुणों का समावेश है। कक्षा में सभी बालकों का प्रदर्शन तभी अच्छा हो सकता है जब कक्षा समायोजन इस तरह किया गया हो कि सभी प्रकार के बालकों की व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखा गया हो।

समावेशी शिक्षा की अवधारणा

भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो इतिहास इस बात का गवाह है कि दिव्यांगता समाज का एक हिस्सा तो हो गई थी, परन्तु इसके साथ नीतिगत ढंग से कैसे निपटा जाये अथवा दिव्यांगों का संवर्धन और संभव विकास कैसे किया जाये, इसके लिए कोई विशेष योजना मुख्य धारा में नहीं थी। जैसे-जैसे समाज में बौद्धिकता का विकास हुआ, लोग बालकों एवं किशोरों की विशिष्ट आवश्यकताओं को लेकर संवेदनशील हुए इस संवेदनशीलता के कारण ऐसे बालकों और किशोरों का पृथक्कीकरण होता गया। अब, जबकि हम समावेशी शिक्षा की बात कर रहे हैं तो हमारे पास पर्याप्त कारण है कि समावेश के बारे में सोचें। समावेशी शिक्षा की अवधारणा का मूल स्रोत बालकों को शिक्षा के समान अवसर है। बालकों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने का अर्थ शिक्षा से संबंधित समान अवसर प्रदान करना नहीं है। अपितु

इस अवधारणा को ध्यान में रखते हुए व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर आवश्यकतानुसार शिक्षा के अवसर प्रदान करना है। हमारी यह जिम्मेदारी है कि हम यह समझें कि प्रत्येक बालक की आवश्यकताएं अलग-अलग हैं। समाज में यह धारणा है कि कुछ बालक सामान्य तथा कुछ विशिष्ट होते हैं। हमें इस बात की आवश्यकता है कि हम उन्हें किसी भी प्रकार से प्रयास करके उनकी दिव्यांगता को दूर करने का प्रयास करें अथवा ऐसा प्रयास करें कि वे सामान्य बालकों के समान शिक्षा के मूल्य अर्जित करने में सक्षम हों। साथ ही यह भी प्रयास करें कि वे समाज में शामिल सामान्य बालकों की तरह समाज में अपना स्थान बना सकें। एक बालक को जहां समाज में सम्मिलित रहने का अधिकार रहता है वहीं उसे स्वेच्छा से समाज से पृथक् होने का भी अधिकार होता है। इस प्रकार समाज में सम्मिलित होने का दिव्यांग बालक को भी अधिकार है, जो कि उसे प्राप्त करना चाहिये। समावेशी शिक्षा कार्यक्रम में शिक्षकों के सामने यह चुनौती होती है कि वह दिव्यांग बालकों को इस प्रकार सहयोग दे कि उनका सामाजिक और शैक्षिक दोनों प्रकार से समावेश हो सके। केवल शिक्षा व विशेष शिक्षक के द्वारा ही अर्थपूर्ण समावेश संभव नहीं है यह तब सार्थक होगा जब हमारे प्रयास तात्कालिक हों। सार्थक समावेश के लिए हमें विद्यालय में ऐसे प्रशासकों, शिक्षकों और अभिभावकों की आवश्यकता है जो भिन्नता के मूल्यों को समझते हों। साथ ही समस्यात्मक बालकों को परंपरागत तौर पर अलग रखने पर भी प्रश्न उठा सके।

सरकारी कार्यक्रम सर्वशिक्षा अभियान एवं राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के तहत बालकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बिना किसी भेदभाव के प्रदान करने का प्रावधान रखा गया है। अनुभव और शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि विशिष्ट एवं पृथक्कीकृत विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा बालक के सर्वांगीण विकास में सहायक नहीं होती।

भारत एक प्रजातांत्रिक देश है। प्रजातांत्रिक देश की विचारधारा के अनुसार सभी बालकों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अधिकार है चाहे वह प्रतिभाशाली हो अथवा बाधित हों। किसी भी रूप में जैसे- शारीरिक बाधित, मानसिक मंदित, दृष्टि बाधित, श्रवण बाधित, शारीरिक अंग के अस्थि दोषों से बाधित हो, सभी को शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार है। सभी प्रकार के बालकों को स्कूल शिक्षा प्राप्त करने व विकास का पूर्ण अधिकार है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि सभी व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से किसी न किसी सीमा तक एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। कभी-कभी ये भिन्नतायें इस सीमा तक पायी जाती हैं कि इन बालकों को विशिष्ट वर्गों में रखकर शिक्षा देना आवश्यक हो जाता है। सरकार, समाज तथा शिक्षा संस्थाओं का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे इन बालकों को पहचान कर उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा एवं निर्देशन प्रदान करें।

समावेशी शिक्षा इसलिए महत्वपूर्ण है क्यों कि इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार से निर्योग्य (दिव्यांग) बालक भी एक सामान्य विद्यालय की सामान्य कक्षा में सामान्य बालकों के साथ शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं। परन्तु समस्या यह है कि दिव्यांग बच्चे सामान्य विद्यालय की सामान्य कक्षाओं में लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। इसका मुख्य कारण शिक्षकों और अभिभावकों के समावेशी शिक्षा के प्रति उचित दृष्टिकोण की कमी है। कहीं न कहीं समुदाय में समावेशी शिक्षा के प्रति जागरूकता है।

संदर्भ

1. एआईआर 1992 एससी 1858
2. एआईआर 1993 एससी 2178
3. 199 7(10) एससीसी 549
4. 2012 एससीसी ऑनलाइन डेल 4651
5. वही। पृष्ठ 14-15

6. (2014) 5 एचसीसी (डेल) 215
7. 2018 एससीसी ऑनलाइन यूटीटी 677
8. 2019 एससीसी ऑनलाइन डेल 9015
9. वैदिकाभरण में स्वरित आघात के बाद उच्चरित होने वाले कतिपय व्यंजनों की मात्रा में वृद्धि का उल्लेख भी किया गया है।